

लक्ष्य का विरोधाभास

प्रिय दोस्तों,

जब हम पूज्य बाबूजी महाराज के लेख पढ़ते हैं तो देखते हैं कि वे हमें यात्रा के आरम्भ से ही अपना लक्ष्य तय करने के लिए प्रेरित करते हैं। इसके कई उदाहरण हैं। वे इस भावना या विचार को बार-बार विभिन्न तरीकों से दोहराते हैं। फिर भी हम पाते हैं कि अगर दिल में किसी भी हालत की पहुँच के लिए इच्छा है जिसमें सबसे ऊँची हालत भी शामिल है, तो यह इच्छा हमें भटका देगी। वास्तव में यह हमें कुछ भी प्राप्त करने से रोक देगी। आध्यात्मिकता के क्षेत्र में उपलब्धि इस बात पर निर्भर करती है कि 'मैं' का कितना विघटन हुआ है। जब किसी आध्यात्मिक हालत के लिए वलालसा होती है तो उसके पीछे 'मैं' (अहं) होता है। और यह उसी 'मैं' की उपस्थिति होती है जो उस हालत में पहुँचने से हमें रोक देती है जिसकी हम लालसा करते हैं। इसलिए कोई भी लक्ष्य स्वतः ही अपनी प्राप्ति में रूकावट बन जाता है, चाहे वह उच्चतम लक्ष्य हो या मझोला। यह आध्यात्मिक जीवन का शुरुआती विरोधाभास है। आगे बढ़ने के लिए इसका समाधान किया ही जाना चाहिए।

आइये, हम जीवन के प्रति बाबूजी के नजरिये को समझने की कोशिश करते हैं। क्या उनका कोई लक्ष्य था? वे लिखते हैं कि जब वे युवा थे तो अक्सर अपनी माँ को पारंपरिक पूजा करते हुए देखते थे। लगभग 6 या 7 साल की उम्र में उन्होंने इसे सिखाने के लिए कहा तो माँ ने उनके माथे को चन्दन के तिलक से सजाना शुरू कर दिया और वह बहुत खुश हो जाते कि चलो आज मैंने अपनी पूजा कर ली। कुछ साल बाद उन्हें सत्य की प्रबल चाह हुई जो भगवद्गीता तक ले गयी। अंततः परिवार के पुजारी ने उन्हें राम-राम का जाप करने की सलाह दी जो उन्होंने कुछ समय के लिए बड़े ही धार्मिक भाव से किया। लेकिन वह उनका हृदय संतुष्ट नहीं कर पाया। सत्य के प्रति उनकी तीव्र तड़प उन्हें एक दिन लालाजी महाराज तक ले गयी। वह पहली नज़र में ही बाबूजी के दिल में समा गए और उन्हें लगा कि यही उनका घर है।

बाबूजी ने कभी भी, किसी भी तरह से अपने गुरु से अपनी पूर्णता की इच्छा नहीं रखी। उन्होंने आध्यात्मिक उन्नति के बारे में कभी नहीं सोचा, न ही अपने गुरु से प्रेम और स्नेह की कामना की, बल्कि वो पूरे दिल से लालाजी से प्रेम करते थे। बाबूजी का जीवन एक और केवल एक चीज़ से परिभाषित था और वह था अपने गुरु के प्रति सम्पूर्ण और एकनिष्ठ समर्पण। उनका पूरा फोकस लालाजी पर ही था जिनके चरणों में उन्होंने पूर्ण समर्पण की हालत पैदा कर ली थी। इसका परिणाम यह हुआ कि उनकी बेमिसाल और अथाह प्रगति हुई।

अक्सर यह गलत समझा जाता है कि लय होना ही उच्चतम हालत है जिसे प्राप्त करना संभव है। लेकिन बाबूजी के जीवन में हमें कुछ और ही परिलक्षित होता है। हम देखते हैं कि विलय से परे भी कुछ उपलब्धियाँ हैं जैसे किसी गुरु के समान ही हो जाना। और हम यह भी देखते हैं कि इसके आगे भी जाना संभव है। गुरु के समान हो जाने के बाद की अवस्थाओं का वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता।

हालांकि बाबूजी ने कभी भी उन दिव्य उपहारों की लालसा नहीं की जो उन्हें प्रचुर मात्रा में मिले थे। उन्होंने कभी इन आशीर्वादों की लालसा नहीं की फिर भी लालाजी के प्रति उनकी श्रद्धा इतनी अधिक थी कि उन्होंने प्रत्येक स्तर और हालत में पूरी तरह महारत हासिल कर ली थी जो उन्हें लालाजी ने प्रदान की थी। उन्होंने अपने गुरु के प्रयासों को इस हद तक महत्त्व दिया कि वे उन्हें बेकार नहीं जाने दे सकते थे। इसलिए उन्होंने खुद पर बहुत मेहनत की।

क्या लालाजी ने बाबूजी को कभी निर्देश दिया या उनसे अनुरोध किया कि वे समर्पण और निष्ठा के इस तरीके को अपनायें? बाबूजी का अपने गुरु के प्रति रवैया स्वाभाविक रूप से उनके स्वयं के दिल में पैदा हुआ। बाद में स्वयं एक गुरु के रूप में बाबूजी का स्वभाव ऐसा था कि वे किसी से व्यक्तिगत भक्ति, समर्पण या निष्ठा का अनुरोध नहीं कर सके। दुर्भाग्य से उनके अभ्यासी अक्सर सही मार्ग खो देते थे लेकिन बाबूजी इस सम्बन्ध में उनका मार्गदर्शन नहीं कर सके। उनके हाथ उनके अबोध शिष्टाचार और विनम्रता के कारण बंधे हुए थे जो उन्हें इस स्थिति में सीधे कुछ करने से रोकते थे। वे संक्षिप्त और अप्रत्यक्ष शब्दावली जैसे 'केन्द्र', 'साक्षात्कार' या ईश्वर के साथ पूर्ण ऐक्यफका उपयोग करते हुए लक्ष्य को परिभाषित करते थे।

एक अभ्यासी को लिखे अपने एक पत्र में बाबूजी ने 'सतत स्मरण' के महत्त्व के बारे में लिखा था कि कैसे अभ्यासी को मानसिक रूप से और लगातार अपने गुरु के संपर्क में रहना चाहिए। शायद बाबूजी बहुत शर्मिले थे इसलिए उन्होंने अपने इस अभ्यासी से कहा, यह सोचो कि मैं पूरे समय आप लोगों को याद कर रहा हूँ। हालाँकि मनोवैज्ञानिक रूप से यह उल्टा है मगर दोनों का एक ही उद्देश्य है। वह कभी भी इस तरह की बातें नहीं कर सकते थे जैसे 'मुझे अपना लक्ष्य बना लो।' आखिर वे ऐसा भला कैसे कह सकते थे। वे तो स्वयं महसूस ही नहीं करते थे कि उनका कोई वजूद भी है। हालाँकि मिशन की प्रार्थना के शब्द काफी स्पष्ट हैं:-

हे नाथ,

तू ही मनुष्य जीवन का वास्तविक ध्येय है।

हम अपनी इच्छाओं के गुलाम हैं,

जो हमारी उन्नति में बाधक हैं।

तू ही एकमात्र ईश्वर एवं शक्ति है,

जो हमें उस लक्ष्य तक ले चल सकता है।

इन पंक्तियों की उत्पत्ति बाबूजी के साथ नहीं हुई थी। स्वामी विवेकानन्द ने उन्हें बोल कर ये लाइनें लिखायीं थीं। उच्च आदेशों के तहत उन्होंने इन्हें लिपिबद्ध किया था। कभी-कभी लोग बाबूजी से पूछते थे कि यह गुरु (मास्टर) कौन है जिसका उल्लेख प्रार्थना में है। बाबूजी का त्वरित उत्तर था, यह ईश्वर ही है जो सच्चा गुरु है। लेकिन अगर प्रार्थना ईश्वर को सम्बोधित है तो वाक्य को क्यों दोहराएँ। तू ही एकमात्र ईश्वर एवं शक्ति हैं जो हमें उस लक्ष्य तक ले चल सकता है? यह तर्क विचार करने योग्य है और हर व्यक्ति को इस पर अपना निष्कर्ष निकालना होगा।

प्रार्थना की पहली पंक्ति यह नहीं बताती है कि गुरु को एक लक्ष्य के रूप में लेने का क्या अर्थ है। हम इस विचार से क्या निष्कर्ष निकाल सकते हैं? क्या इसका मतलब यह है कि हमें उनके साथ लयावस्था प्राप्त करने की कोशिश करनी चाहिए? क्या हमें उनके समान बनने का प्रयास करना चाहिए? इस तरह के तरीकों का मतलब होगा कि हम प्रार्थना का गलत अर्थ निकाल रहे हैं, और फिर हमें यह अपनी राह से हटा देगा। लयावस्था की प्राप्ति का अनुरोध अपने आपमें एक अत्यन्त दुष्कर आग्रह है। इस तरह की अवस्था उपहारस्वरूप मालिक अभ्यासियों को स्वयं देते हैं। तो उस स्थिति में यह मेरा लक्ष्य कैसे हो सकता है? इस तरह के विचार को पोषित करने के लिए केवल एक ऐसी स्थिति पैदा होगी जहाँ मैं अपने गुरु की भावनाओं को अपने पक्ष में करने का प्रयास करूँगा, यानी स्वयं को नुकसान पहुँचाने का काम।

इसके अलावा विलय की हालत प्राप्त करने के लिए मेरी इच्छा इसे प्राप्त करने से ही रोक देती है, क्योंकि यह केवल इस इच्छा के आधार पर 'अहम' को मज़बूत करेगी। इसी प्रकार हम देखते हैं कि बाबूजी लक्ष्य के प्रति तीव्र लालसा और तड़प पैदा करने की ज़ोरदार सिफारिश करते हैं। वह किस प्रकार की तड़प के बारे में बात कर रहे हैं? तड़प के कई स्तर हैं। सबसे निम्नतम प्रकार की तड़प हमें वहाँ नहीं ले जायेगी जहाँ हम जाना चाहते हैं, चाहे वह कितनी भी तीव्र क्यों न हो। उदाहरण के लिए, जिस तरह की तड़प अपने प्रिय को याद करने से पैदा होती है, वह उस स्थिति से काफ़ी अलग होती है जिसमें आप केवल अपने प्रियतम के प्रति तड़प रखते हैं। ज़रा सोचिये, यदि आपके प्रियतम हर वक़्त आपसे कुछ पाने की कोशिश में लगे रहें तो?

उत्कृष्ट किस्म की तड़प गुरु की भौतिक उपस्थिति के लिए किसी लालसा को स्वीकार नहीं करती है। अपने एक सहयोगी को एक पत्र में बाबूजी लिखते हैं, वास्तव में गुरु का स्वरूप ईश्वर नहीं है बल्कि इसके पीछे दिव्यता है। इसीलिए मैंने इस दिव्यता को अपने आपको सौंपा है, उसके भौतिक अस्तित्व को नहीं। लेकिन तब वे यह भी कहते हैं, यदि आप अपने विचार में गुरु के पूरे स्वरूप को देखते हैं तो दिव्यता पीछे रह जायेगी। यहाँ बाबूजी गुरु के भौतिक स्वरूप को देखने की अनुशंसा नहीं कर रहे हैं और यह न ही कभी उनका अपना दृष्टिकोण था। दर्शन केवल आंतरिक स्तर पर होता है, और ध्यान ही एकमात्र ऐसी हालत है जिसमें गुरु से कभी भी मुलाकात हो सकती है।

इस भावना के साथ बाबूजी ने ध्यान की अपनी पद्धति अपनायी जिसे लालाजी ने कभी उनके लिए निर्धारित नहीं किया (लेकिन जिसकी उन्होंने मौन रूप से सराहना की)। उन्होंने लालाजी के भौतिक स्वरूप पर स्वतः ही इस विचार के साथ ध्यान किया कि वे परम से जुड़े हैं। बाबूजी बाद में कहते हैं, यह सिर्फ मेरे लिए ही था। उनका इरादा किसी भी तरह से अभ्यासियों पर दबाव बनाने का नहीं था। किसी के जीवन में व्यक्तिगत रूप से खुद को शामिल करना उनके स्वभाव में नहीं था। इसलिए वह इस तरह के मामलों में सीधे सामने नहीं आते थे। उनका प्रत्यक्ष होना भी बेकार होता क्योंकि जब तक कोई शिष्य अपने लिए मार्ग नहीं देख सकता तब तक इस तरह के मार्गदर्शन का प्रतिरोध किया जायेगा। जबकि यदि शिष्य सत्य को देख सकता है तो उसे कहने की आवश्यकता ही नहीं है। सबसे पवित्र ज्ञान हमेशा ऐसा ही होता है। यह स्वाभाविक रूप से भीतर से आना चाहिए। कहावत है, कोई भी बन्दर को पहाड़ चढ़ना नहीं सिखा सकता है। केवल अभ्यास ही हमें प्राकृतिक तरीके से बिना किसी रुकावट या प्रतिरोध के सही तरीके तक ले जा सकता है। यह प्रतिरोध पैदा नहीं करता क्योंकि यह हमारे भीतर से आता है, बजाय किसी बाहरी स्रोत के। अक्सर यह हमें ऐसा कोई ज्ञान भी नहीं देता जिससे हम सहमत नहीं हो सकते हैं बल्कि यह हममें सही भाव या दृष्टिकोण पैदा करता है। यह हमारे वास्तविक अखलाक या चरित्र के कारण होता है जो उत्तरोत्तर प्रकाश में आता है जो कि हमारे रवैये को दर्शाता है।

बाबूजी द्वारा दी गयी विधियाँ ध्यान, सफाई और प्रार्थना अद्वितीय हैं। हालांकि पूरी दुनिया ध्यान के बारे में बातें करती है लेकिन ध्यान की सही अवस्था लाने में लगभग सभी तरीके कम पड़ जाते हैं। कुछ लोगों को एक साथ घंटों, कई दिनों के साथ-साथ महीनों ध्यान लगाने से संतुष्टि मिल सकती है। वे खुद पर गर्व कर सकते हैं कि वे कितनी देर तक बैठ सकते हैं या कब तक एकांत में रह सकते हैं। हालांकि वास्तव में विशिष्ट ध्यानमय अवस्था जो अवर्णनीय है, उनकी पहुँच से परे है।

बार-बार यौगिक प्राणाहुति प्राप्त करने से हम इन अवस्थाओं में लगभग तुरंत जाने में सक्षम हो जाते हैं। यह दुनिया को बाबूजी का उपहार है जिसके बारे में हम लोगों को जागरूक करना चाहते हैं।

ध्यान की स्थिति में हम गहराई में डूब जाते हैं। हम अपने स्वयं के भीतर इतने केन्द्रित हो जाते हैं कि यह गहराई की अवस्था हमारे दिन प्रतिदिन के कार्यों में परिलक्षित होती है बशर्ते हम इस स्थिति को बनाये रखने में सावधान रहें। इस सतत केन्द्रीयता के लिए एक और शब्द है- सतत स्मरण। विशेष रूप से यह उस व्यक्ति के प्रति हमारा आभार होता है जिसमें हमें तल्लीनता की अवस्था को उपहार में दिया है। इस आभार में हम बस पिघल जाते हैं।

अब महान गुरु के साथ हमारी प्रतिध्वनि शुरू होती है। केवल ध्यान से यह नहीं पैदा हो सकती। सफाई के बिना छापें और इच्छाएं दिल में बनी रहेंगी और हमारे ध्यान को आकर्षित करेंगी (बाहर की ओर ले जायेंगी)। एक अभेद्य परत (झिल्ली) बन जायेगी जो हमें भीतर गहराई में जाने

से रोक देगी।

हममें से अधिकांश यह समझते हैं कि सफाई के अभ्यास से संस्कार या छापें निकल जाती हैं परन्तु इन संस्कारों के निकलने का परिणाम क्या होता है? हमें रिक्तता उपहार स्वरूप मिली है जो संस्कारों को हटाने से उत्पन्न होती है अतः हल्की और हल्की अवस्थाओं का व्यक्त होना शुरू हो जाता है क्योंकि हम अपने नये व्यक्तित्व की रचना बिना किसी आवरण के करते हैं। यह नयी अवस्था कम से कम का अधिक से अधिक का प्रतीक है। शून्यता (Nothingness) शब्द को और बेहतर तरीके से समझा जा सकता है जब हम इसे दो भागों में विभाजित करते हैं, Nothingness जहाँ हर एक चीज़ की अनुपस्थिति हो। किसी भी चीज़ के लिए कोई इच्छा न बची हो। कोई भी चीज़ आपको अपने केन्द्रित ध्यान की स्थिति से नहीं खींच सकती है। बेशक, इससे हमें सांसारिक गतिविधियों को छोड़ना नहीं पड़ेगा बल्कि हम उन्हें और भी बेहतर तरीके से कर पायेंगे।

जैसे सफाई के बिना ध्यान अपर्याप्त है वैसे ही ध्यान के बिना सफाई के अपने ही परिणाम होंगे। ध्यान द्वारा निर्मित तल्लीनता (डूब) की अवस्था के बिना, सफाई से उत्पन्न आंतरिक खालीपन केवल ज़्यादा से ज़्यादा चीज़ों को आकर्षित करेगा जिसका अर्थ है, छापें जो भविष्य की इच्छाओं के लिए बीज बन जाती हैं। शून्यता का लाभ उतना ही अधिक होगा जितना कि व्यक्तित्व में स्वयं की अनुपस्थिति का पर्दा और जड़ करने की ताकत होगी। जैसे कि मालिक, जिनका व्यक्तिगत स्तर पर पूर्ण करने के लिए कोई भी स्वार्थपरक उद्देश्य नहीं होता।

इस रिक्तता या शून्यता की अवस्था की पराकाष्ठा है 'मैं' की पूर्ण अनुपस्थिति जहाँ आपका अपने लिए कोई वजूद नहीं है। यही शरणागति है। शरणागति की इस सुन्दर स्थिति के लिए सबसे निकटतम चीज़ है समर्पण। आध्यात्मिकता के क्षेत्र में शुरुआत करने वालों के लिए, आत्मसमर्पण शब्द अक्सर चिंता का कारण बनता है क्योंकि हम इसे 'हार' शब्द के साथ जोड़ते हैं। केवल यह एहसास ही कि मैं अपनी बहुत प्यारी माँ के संरक्षण में हूँ, आनंद देता है। ऐसी ही स्थिति एक भक्त को आनंद देती है जब वह शरणागति की स्थिति में पहुँच जाता है।

बाबूजी ने कहा है कि मृत्यु से पहले ही आपका मरना मुक्ति का मार्ग है। यह कोई डरने की बात नहीं है। आपने कुछ भी नहीं खोया है। वास्तव में, आपको एक भक्त के रूप में सबसे बड़ा आशीर्वाद मिला है जो स्वयं गुरु का अपना दिल है। इसके आगे कुछ भी नहीं है। अब गुरु और शिष्य दोनों एक दूसरे की याद में रहते हैं। शिष्य ने गुरु के चरणों में शरणागति ले ली है और गुरु ने शिष्य को पूर्णतया स्वीकार कर लिया है। यह पारस्परिक है।

शरणागति वास्तविक होनी चाहिए। यह आपका अखलाक होना चाहिए, आपका वास्तविक चरित्र, आपका सार होना चाहिए। यदि यह कृत्रिम (बनावटी) है तो आप मालिक को अपने से दूर जाते हुए पायेंगे क्योंकि आपकी शरणागति के विपरीत उद्देश्य है। चाहे आप मुक्ति की तलाश में हों या केंद्रीय क्षेत्र में प्रवेश करना चाह रहे हों, बेहतर होगा कि ऐसी इच्छाओं के साथ गुरु से संपर्क न करें। तब तक जब तक कि आप इन्हें हटाने के लिए उनसे प्रार्थना न कर रहे हों।

बेशक गुरु हमें मुक्ति या केंद्रीय क्षेत्र से वंचित नहीं करना चाहते। इसके बजाय वे चाहते हैं कि हम उनसे अधिक ऊँचाइयों पर चढ़ें और फिर उसे हासिल करने में कामयाब रहें। फिर भी यह सब अच्छा है जो इस रिश्ते की पवित्रता से आता है जिसे हमें किसी भी अन्य लक्ष्य की कीमत पर बनाये रखना चाहिए।

बाबूजी अक्सर लोगों की कुछ पाने की इच्छा से मजबूर थे। बहुत ही सरलता से उन्होंने कई लोगों को केंद्रीय क्षेत्र में रखा जो वहाँ सामान्य प्रक्रिया के माध्यम से नहीं पहुँचे होंगे। अफ़सोस की बात है कि परिणाम अस्थायी थे। वे लम्बे समय तक वहाँ नहीं रह सकते थे क्योंकि वे उस आयाम की अद्वितीय सूक्ष्मता के साथ प्रतिध्वनित होने में असमर्थ थे। नतीजतन, वे गिर गये। जब वे लोग जिन्हें ज्ञात था कि वे केंद्रीय क्षेत्र में पहुँच चुके हैं, नीचे फिसलने लगे। उन्होंने मालिक और मार्ग के बारे में बुरा-भला कहा। क्या प्रकृति ऐसे व्यक्तियों को माफ़ करेगी? बाबूजी के समय में बिना शर्त के अभ्यास करने वाले लोग दुर्लभ थे। उनकी डायरियों में हमें ऐसे उदाहरण मिलते हैं जहाँ लालाजी इस पर टिप्पणी करते हैं:-

18 अगस्त, 1944 :-

श्रद्धेय लालाजी- यह स्वयं को भक्त और उन्हें भक्ति की वस्तु के रूप में समझने के लिए मानवीय शिष्टाचार है। लोग इस स्थिति को भूल जाते हैं और ईश्वर को अपनी सेवा के लिए एक साधन के रूप में मानते हैं। यह देवताओं और गुरु के मामलों में भी लागू होता है।

23 अगस्त , 1944

श्रद्धेय लालाजी- कुछ ऐसे हैं जो आपके लिए इच्छुक होंगे और उनका कोई स्वार्थपूर्ण उद्देश्य नहीं होगा।

भौतिक लाभ या आध्यात्मिक प्रगति के लिए उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अभ्यास करना शुरुआत में स्वीकार्य हो सकता है लेकिन हमें खुद को जल्द से जल्द इस तरह के सभी विचारों से दूर रहने और सच्चा अभ्यासी बनने के लिए पीड़ा उठानी चाहिए। अभ्यास का सामान्य अर्थ है मप्रैक्टिसफ़ हालांकि यह साधना से अलग है।

साधना एक विशिष्ट उद्देश्य के साथ की जाती है जैसे मुक्ति या कोई अन्य हालत या साध्य (उपलब्धि) या ध्येय (लक्ष्य) जिसे साधक प्राप्त करना चाहता है। अभ्यास साधना के विपरीत होता है जिसके अंत की कोई निश्चित सीमा नहीं है। निष्काम कर्म (इच्छारहित कर्म) की भावना में हम अपने अभ्यास के परिणामों का निर्णय अपने मालिकों को समर्पित कर देते हैं। इसलिए यह शरणागति की अवस्था है जो हमें अभ्यासी के रूप

में परिभाषित करती है। गीता के कर्म का शाश्वत सिद्धांत आध्यात्मिक क्षेत्र में भी लागू होता है। बिना शरणागति के हम केवल साधक हैं और इसके बिना किसी भी अवस्था या स्थिति को प्राप्त करना बहुत ही तुच्छ (ग़ैर महत्वपूर्ण) हो जाता है।

सहज मार्ग का एक खूबसूरत पहलू यह है कि जब मेरे मन या दिल में पूछने के लिए कुछ भी नहीं होता है और परिणामस्वरूप जो रिक्तता आती है वह स्वतः ही कृपा को आकर्षित करती है। तब वे नीचे उतरते हैं और हमें ले जाते हैं। जितना अधिक हम इच्छारहित होते हैं, उतना ही वे हमारी सहायता करते हैं। हालाँकि हमने बार-बार सुना है, जब हम पंच भूता (पंच तत्व) में पहुँच जाते हैं और पिंड प्रदेश को पार कर लेते हैं तब हमें मुक्ति का आश्वासन मिल जाता है, मुक्ति केवल उन पाँच चक्रों को पार करने का मसला नहीं है बल्कि यह उन चक्रों में से प्रत्येक में रिक्तता (खालीपन) पैदा करने का मसला है। जैसे-जैसे उचित जीवन शैली और सफाई के माध्यम से चक्र और अधिक परिष्कृत होते जाते हैं, पहले चक्र से ही हममें संतोष प्रबल होता जाता है और अहंकार में कमी आती जाती है। क्या हमें अपने अहंकार की परिशुद्धि के लिए नवें या दसवें चक्र तक पहुँचने के लिए इंतज़ार करना चाहिए? यह इस तरह से होगा जैसे आप जिम जायें और अचानक 100 किलो का वज़न उठाने का प्रयास करें जबकि आपने अपने जीवन में पहले कभी वज़न नहीं उठाया है। हमें हर बार यथासंभव वृद्धि करने की ज़रूरत है। इसका मतलब यह है कि एक अभ्यासी के रूप में हमें अपने पहले ही दिन से इस रिक्तता का निर्माण करना शुरू कर देना चाहिए। अहंकार में कमी वास्तव में एक अच्छी हालत को परिभाषित करती है, भले ही आप यात्रा के किसी भी चरण में हों। एक अच्छी हालत वह है जिसमें आप केवल ग्रहणशील हैं और किसी भी तरह से खुद को प्रभावशाली नहीं दिखा रहे हैं। यह एक प्रकार से साक्षी होना है जिसमें हम उसकी इच्छा को अपनी ओर से बिना किसी हस्तक्षेप के ले जाने की अनुमति देते हैं।

राधा जी और भगवान कृष्ण के विषय में एक सुंदर कहानी है। राधा जी भगवान् कृष्ण की बाँसुरी से ईर्ष्या करती हैं जिसे वे अपने होंठों पर रखते हैं। एक दिन वह बाँसुरी तोड़ने की कोशिश करती हैं। भगवान् कृष्ण कहते हैं, आप इस बाँसुरी के अन्दर क्यों नहीं देखतीं और मुझे बताइए कि इसमें ईर्ष्या जैसी क्या बात है? राधा अन्दर देखती हैं और कहती हैं, इस बाँसुरी में कुछ भी नहीं है। भगवान् कृष्ण मुस्कराते हैं और कहते हैं इस बाँसुरी की शून्यता एवं खालीपन ही इसे मधुर बनाता है। यदि इसके अन्दर एक बाल भी चला गया तो संगीत की लय बिगड़ जायेगी और उसका राग बेसुरा हो जायेगा।

यदि हम भगवान कृष्ण की बाँसुरी की तरह अन्दर से खाली एवं शून्य हो जायें तो कल्पना कीजिये कि हमारी ज़िन्दगी कितनी मधुर हो जायेगी। पूर्ण शून्यता सेवा और भक्ति की पूर्व शर्त है। बाँसुरी संगीत तय नहीं करती। न ही यह शिकायत कर सकती है कि कोई अलग राग बजाओ। यह तो मालिक ही हैं जो संगीत तय करते हैं। मालिक ही तय करते हैं कि इस साधन से किस तरह का संगीत निकालना है।

क्या एक साधन वास्तव में सेवा कर सकता है? नहीं, बाँसुरी खुद ही नहीं बज सकती है। यह कुछ नहीं दे सकती अपनी उपलब्धता के अलावा। जो भी धुन बज रही है वह उसकी ग्रहणशीलता है। यह उपलब्धता कई रूप ले सकती है। इसका अर्थ यह नहीं कि हम अपने से कोई प्रयास न करें और अपने मालिक का इंतज़ार करें कि वही हमें सिखाने आयेंगे। बजाय इसके, हम अपने दिलों में उतरने वाली सूक्ष्मता के लिए खुलें, खाली और ग्रहणशील बने रहें। यह हमारे निर्देश हैं जो कभी-कभी व्यक्तिगत रूप से गुरु के माध्यम से आते हैं। अन्य समय में संकेत हमारे आस-पास होते हैं। ज़्यादातर वे भीतर से उभरते हैं। सारे मामलों में, यह हृदय ही है जो कि मालिक की उपस्थिति को इन संकेत में से पहचानता है, चाहे वे भीतर से आयें हों या बाहर से। हमारा एक ही काम है, अपने अन्दर शून्यता उत्पन्न करना। इसके बाद, चाहे वे हमारा इस्तेमाल करें या न करें, ये उनका काम है। या हमें आगे तक ले जायें या न ले जायें। मेरे दिल का सबसे बड़ा लक्ष्य है कि मेरे मालिक मुझसे खुश रहें। यही सब चीज़ों का अंत है।

मालिक को आपका नाम जानने की ज़रूरत नहीं है, न ही आपका चेहरा पहचानने की और न ही आपकी हालत जानने की ताकि वे आपके साथ खुशी महसूस कर सकें। अगर वे ऐसा करें तो यह एक कुशल प्रणाली ही नहीं होगी। आप एक दिन सिटिंग देने के लिए मैनहट्टन से ब्रुकलिन की यात्रा कर सकते हैं और स्वतः ही उनकी कृपा और प्राणाहुति उतरना शुरू हो जाती है। हो सकता है कि वह सचेत रूप से न जानते हों कि आप उस क्षण में अच्छा काम कर रहे है या नहीं। हो सकता है कि आपका विचार उनके दिमाग को पार न करे। मगर, वे आपके साथ खुश हैं, और आपकी अवस्था में बदलाव ही इसका प्रमाण है। गुमनामी का अर्थ अपने साथियों के सामने शेखी बघारने से ही नहीं अपितु मालिक के सामने भी दिखावा करने की कोई ज़रूरत नहीं है। गुमनामी से संतुष्ट होना एक विश्वास की निशानी है जो तब आता है जब हमारे पास उनसे प्रशंसा और इनाम पाने के लिए प्रमाणित करने को कुछ भी न हो।

लक्ष्य का विरोधाभास हमारे मिशन की प्रार्थना में उजागर और संकल्पित दोनों है। जो इस प्रार्थना के प्रति हमारी समझ और दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। प्रार्थना में असीमितता होती है, लेकिन इसे एक ही नज़र में देखने का तरीका यह है कि हमारा लक्ष्य क्या है और यह भी कि उस लक्ष्य को पाने की हमारी बहुत इच्छा है जो हमारी उन्नति या प्राप्ति के लिए रुकावट बनती है।

हे नाथ! तू ही मनुष्य जीवन का वास्तविक ध्येय है,

हम अपनी इच्छाओं के गुलाम हैं, जो हमारी उन्नति में बाधक हैं।

अब एक विरोधाभास के साथ तीसरी पंक्ति हमें बचाती है -

तू ही एकमात्र ईश्वर एवं शक्ति है,

जो हमें उस लक्ष्य तक ले चल सकता है।

इस पंक्ति का अर्थ क्या है? शायद इसका अर्थ है कि हमें उपलब्धि के बारे में भूल जाना चाहिए क्योंकि इस खेल में केवल एक ही खिलाड़ी है।

एक कृतज्ञ हृदय के लिए लक्ष्य का क्या उपयोग है जो कुछ भी हासिल करने की कोशिश नहीं कर रहा है? हमारे दिल से इसे स्वीकार करने के बाद केवल आभार ही शेष रहता है।

सार रूप में, जब हम ध्यान की इस प्रणाली से जुड़ते हैं, कई बार अचानक अलग-अलग लक्ष्यों से शुरू करते हैं या कभी-कभी बिना लक्ष्यों के। जैसे ही अधिक से अधिक ध्यान करते हैं, हम उन हालात से प्रेम करने लगते हैं जिससे गुज़रते हैं। हम उनका आनंद लेना शुरू कर देते हैं और उनकी सराहना करते हुए उच्च स्थितियों के लिए तड़पना शुरू कर देते हैं।

कुछ बिन्दुओं के बाद यह भी विदा ले लेती है। हमसे अधिकशांति लोग बिना सचेत जागरूकता के जो कुछ हो रहा है उससे बेखबर होकर उच्च लोकों में जाने लगते हैं। अंततः समुद्र में गिरने वाली पानी की बूँद की तरह, मैं भी सागर हूँ यह दावा करने के लिए कोई बूँद नहीं बची है। एक अभ्यासी आखिरकार घर पहुँच जाता है, बिना दीवारों का घर।

विरोधाभास पार हो जाता है। जब हम समुद्र में गिरने वाली पानी की बूँद का वर्णन करते हैं तब हम विलय की व्याख्या करने में भी सक्षम हैं। लेकिन समानता से सम्बंधित जो स्तर हैं उनके बारे में बताना बहुत मुश्किल है। तर्क के द्वारा कोई भी साधक इस तरह की समानता का वर्णन नहीं कर सकता। केवल एक गुरु ही ये चीज़ें बता सकते हैं।

22 जुलाई, 1944.

पूज्य लालाजी महाराज ने कहा, अगर रामचन्द्र का रग-रेशा चीर कर देखा जाये और चीरने वाले की आँख मौजूद हो तो उसमें उसे मेरी पूरी ताकत का दर्शन होगा।

आइये हम अपनी प्रार्थना अपने महान मालिक को अर्पित करें कि हम जल्द ही अपने इसी जीवन में ऐसे मुकाम पर पहुँच सकें।

प्यार और सम्मान के साथ,

कमलेश पटेल

कान्हा शांतिवनम

30 अप्रैल, 2019

पूज्य श्री रामचन्द्र जी की 120वीं जयंती के अवसर पर